International Journal of Sanskrit Research 2018; 4(5): 23-24

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2018; 4(5): 23-24
© 2018 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 10-07-2018
Accepted: 11-08-2018

डॉ गौरव शर्मा
व्याख्याता (संविदात्मक)
गवर्नमेंट डिग्री कॉलेज, नौशहरा
जम्मू, भारत

Correspondence
डॉ गौरव शर्मा
व्याख्याता (संविदात्मक)
गवर्नमेंट डिग्री कॉलेज, नौशहरा
जम्मू, भारत

वर्णव्यवस्था का विश्लेषणात्मक विवेचन

डॉ गौरव शर्मा

प्रस्तावना

वर्ण–व्यवस्था का अस्तित्व अनादि है। कर्मों, सिद्धान्तों और विचारों की दृष्टि से व्यष्टि और समष्टि के कार्य–क्षेत्रों को यद्यपि एक–दूसरे से अलग किया गया किन्तु एक ही समाज या मानवता से सम्बद्ध होने के कारण उनकी पूर्णता पारस्परिक समन्वय में ही बतायी गयी है। व्यष्टि और समष्टि की पृथक्–पृथक् उन्नति को एक देश में स्थापित एवं नियमित करने के उद्देश्य से ही वर्ण व्यवस्था की गयी। वर्ण–व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति को सामूहिक या समष्टिहित की ओर ले जाना है। वेदों में 'वर्ग' शब्द के रूप में वर्णों का तो उल्लेख है किन्तु उनके अधिकारों और कर्त्तव्यों के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा गया है। यह विषय ब्राह्मण–ग्रन्थों से आरम्भ हुआ और धर्मसूत्रों तथा स्मृतियों में उस पर विस्तार से विचार किया गया।

विभिन्न जातियों तथा वर्णों की जन्मना और कर्मणा स्थिति के सम्बन्ध में परम्परा से बड़ा मत–मतान्तर है। ऐतरेय ब्राह्मण के एक सन्दर्भ से ज्ञात होता है कि एक बार ऋषि विश्वामित्र ने अपने पचास पुत्रों को यह आदेश दिया कि वे शुनःशेप, जो कि उनका वंशज न होकर अङ्गिरस गोत्रवंशी अजीगर्त का पुत्र था, को अपना भाई स्वीकार करें किन्तु उनके पुत्रों ने उनकी इस बात को नहीं माना इससे क्रुद्ध होकर ऋषि विश्वामित्र ने अपने कुछ पुत्रों को अन्ध्र, पुण्ड्र, शवर, पुलिन्द और मूतिव आदि जातियों में पतित हो जाने का शाप दे दिया। [1] ये सभी जातियाँ दस्यु अर्थात् अनार्य थीं। इसी प्रकार 'मनुस्मृति' में भी संस्कारच्युत अनेक आर्य जातियों का अनार्य जातियों में पतित हो जाने का उल्लेख किया गया है।[2] इसके साथ ही ऐसे भी अनेक उदाहरण देखने को मिलते हैं कि आर्यों द्वारा विजित दास तथा दस्युओं ने आर्यत्व वरण कर लिया और आर्यश्रेष्ठियों की ही भाँति आचरण करते हुए ब्राह्मणों को गो तथा सुवर्ण का दान दिया।

चातुर्वर्ण्य के सम्बन्ध में बहुधा यही स्थिति देखने को मिलती है। उसका आधार है कर्म। श्रुतियों में चातुर्वर्ण्य का जो वर्ग–विभाजन देखने को मिलता है उसका आधार उनके द्वारा स्वीकार किये गए कर्म एवं व्यवसाय हैं। 'गीता' में स्पष्ट कहा गया है कि स्वभाव से उत्पन्न गुणों के अनुसार कर्मों का विभाजन किया गया। [3]

इसी प्रकार 'छान्दोग्य उपनिषद्' [4] में भी लिखा गया है कि जो लोग पुण्य कर्म करते हैं वे दूसरे जन्म में ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय या वैश्य कुल में उत्पन्न होते हैं और जो पाप कर्म करते हैं वे चण्डालादि योनियों को प्राप्त करते हैं। इसी से प्रतीत होता है कि जाति–विभाजन या वर्ण–विभाजन उनकी उच्चता, हीनता की दृष्टि से न होकर उनके स्वभाव, अर्थात् क्षमता तथा स्वीकृत कर्मों के अनुसार हुआ। समाज के विभिन्न लोगों ने अपनी सुविधा के अनुसार अपने कर्म–व्यापारों को अपनाया और उन्हीं के आधार पर आगे बढ़े। सभी जातियों एवं वर्णों का एक ही मुख्य उद्देश्य था – राष्ट्र की उन्नति करना। यह समष्टि रूप राष्ट्र की उसी विश्वात्मा का ही स्वरूप है। उसका उपकार करने वाले उसकी सेवा में निरत सभी वर्ग एक समान उसी विश्वात्मा का ही स्वरूप थे। इस दृष्टि से 'भागवत' [5] में वर्ण–विभाग के आधार और उनके अधिकार कर्त्तव्यों का अच्छा विश्लेषण किया गया है। मनु ने भी 'मनुस्मृति' में वर्ण विभाजन का आधार लोक–विस्तार ही बताया है। [6]

यद्यपि चारों वर्णों के अलग–अलग कर्त्तव्य और अधिकार निश्चित किये जा चुके थे फिर भी उनमें पारस्परिक घनिष्ठता एवं एकता थी। यहाँ तक कि ब्राह्मण, क्षत्रिय में विवाह सम्बन्ध भी हो जाते थे। उदाहरण के लिए क्षत्रिय राजा शर्यात की पुत्री का विवाह ब्राह्मणवंषीय ऋषि च्यवन से हुआ था। क्षात्रधर्म को तब गौरव की दृष्टि से देखा जाता था। [7] इसके अतिरिक्त क्षत्रिय होने का व्यर्थ दावा करने वाले व्यक्ति की भी स्पष्ट निन्दा की गयी है। [8]

आरम्भिक वैदिक युग में ब्राह्मण और क्षत्रिय के कर्मों में समानता देखने को मिलती है। उदाहरण के लिए देवापि और शान्तनु की कथा को उद्धृत किया जा सकता है।

ये दोनों राजा ऋष्टिषेण के पुत्र थे। शान्तनु छोटा और देवापि बड़ा था। ज्येष्ठ होने के कारण नियमतः देवापि को पिता के उत्तराधिकार से राजा होना चाहिए था किन्तु उसने राजत्व स्वीकार नहीं किया अपितु वह ब्रह्मज्ञानी बना। शान्तनु राजा हुआ किन्तु उसके पापाचरण के कारण उसके राज्य को अकाल ने ग्रस्त कर लिया। उसके निवारण के लिए ब्रह्मज्ञानी देवापि ने यज्ञ किया। इस यज्ञ में देवापि शान्तनु का पुरोहित बना। इस ऋचा से यह बात स्पष्ट होती है कि उस युग में एक ही पिता के दो पुत्रों में से एक क्षत्रिय (राजा) और दूसरा (पुरोहित) हो सकता था जो पुनः इस बात का द्योतक है कि वर्ण विभाजन कर्म पर आधारित था। वेद और वैदिक साहित्य के अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि तत्कालीन कुछ राजाओं ने ब्रह्मविद्या में इतनी दक्षता एवं ख्याति प्राप्त कर ली थी कि ब्राह्मणों ने भी उनसे ज्ञान–ग्रहण किया। उदाहरण के लिए याज्ञवल्क्य ने राजा जनक [9] से, बालाकि गार्ग्य ने काशिराज अजातशत्रु [10] से, श्वेतकेतु आरुणेय ने प्रवाहण जैवलि से [11] और पंच ब्राह्मणों ने कैकयराज अश्वपति से [12] ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया था। ये क्षत्रिय राजा ब्रह्मविद्या में विशेषता प्राप्त किये हुए थे और उनके यहाँ ब्राह्मण शिष्य अध्ययन करते थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि एक व्यक्ति अथवा एक परिवार में उत्पन्न अनेक व्यक्ति भिन्न–भिन्न व्यवसायों को अपनाने के लिए स्वतन्त्र थे। उदाहरण के लिए ऋग्वेद की ऋचा में ऋषि कहता है मैं स्तुतिकर्ता हूँ, मेरे पिता वैद्य हैं, मेरी माता चक्कियों पर आटा पीसती है। हम लोग विभिन्न व्यवसायों द्वारा धनोपार्जन करना चाहते हैं। [13]

इस प्रकार वैदिक युग के समाज में वर्ण ग्रहण की मर्यादा एवं सीमा सच्चरित्र गठन के निमित्त थी किन्तु व्यक्ति के आचारिक, वैचारिक, व्यावहारिक तथा व्यावसायिक उन्नति या प्रगति में उसकी कोई बाधा नहीं थी। अपनी आत्मोन्नति का सबको अधिकार था।

वर्ण–व्यवस्था सम्बन्धी उक्त तथ्यों को दृष्टि में रखकर कहा जा सकता है कि उसके विभाजन का आधार कर्मणा था, जन्मना नहीं। जोकि वर्तमान समय में संकुचित सा हो गया है।

ग्रन्थसूची

1. एष वः कुषिका वीरो देवरातस्तमन्वित।
   युश्मांश्च दायं म उपेता विद्यां यामु च विद्मसि।। ऐतरेय ब्रा० 33/6
2. शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रिय जातयः।
   वृषलत्वं गताः लोके ब्राह्मणादर्षनेन च।। मनु० 10/42
3. कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभाव प्रभवैर्गुणैः। गीता 18/41
4. तद्य इह रमणीयचरणा अभ्याषो हयत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन् ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनि वा वैश्ययोनिंवाथ य इह कपूयचरणा अभ्याषो हयत्ते कपूयां योनिमापद्येर?श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चण्डालयोनिं वा। छान्दोग्योपनिषद् 5/10/7
5. मदभागवत 3/6
6. लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरूपादतः। मनुस्मृति 1/32
7. ऐतरेय ब्राह्मण 8/6
8. न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम्। ऋग्वेद 7/104/13
9. शतपथ ब्राह्मण 6/2/115
10. (क) बृहदारण्यक 2/1
    (ख) कौषीतकी उपनिषद् 4/1
11. छान्दोग्योपनिषद् 5/3
12. छान्दोग्योपनिषद् 5/11
13. कारूरहं ततो भिष गुपलप्रक्षिणी ननाा।
    नानाधियो वसूयवोऽनुगा इव तस्थिमेन्द्रायेन्दो परिस्रव.....।
    ऋग्वेद 9/112/3